



## पहले शोध-प्रश्न फिर शोध जन्तु और शोध विधि

राघवेन्द्र गडगकर

पिछली दो किश्तों में आपने ततैया (आर. मार्जिनेटा) द्वारा अपने छत्ते में किए जाने वाले प्रमुख काम और ततैया के परस्पर सहयोग-परोपकार के बारे में विस्तार से पढ़ा। इस बार किसी जीव-विज्ञान के अनुसंधान के लिए ज़रूरी आधारभूत बातों जैसे शोध-प्रश्न, शोध के लिए जन्तु का चुनाव, शोध विधि और अनुसंधान की रणनीति पर विस्तार से चर्चा है।

अधिकांश अन्य लोगों के समान, मैंने भी कई वर्षों में अनुसंधान की अपनी रणनीति विकसित की है। हममें से अधिकांश लोग जनता के बीच अपनी अनुसंधान रणनीतियाँ बताने से कतराते हैं। मगर मैंने देखा है कि सार्वजनिक अभिव्यक्ति से परहेज़ करने से निजी स्तर पर आत्म-विश्लेषण न

करने की भी प्रवृत्ति पैदा होती है। इसीलिए मैं अपनी अनुसंधान रणनीति के मार्गदर्शक सिद्धान्तों को लेकर यह बेधड़क चर्चा कर रहा हूँ। मेरी अनुसंधान रणनीति का एक प्रमुख आधार इस तथ्य को समझना व स्वीकार करना है कि विज्ञान में नई खोज करना बहुत मुश्किल है। ऐसी खोज बहुत-बहुत

मुश्किल होगी क्योंकि यह अत्यन्त बिरली घटना होती होगी, अन्यथा यह उल्लेखनीय नई खोज ही कैसे कहलाएगी। इसका मतलब यह है कि (ऐसी खोज के लिए) दर्शानुमा काम नहीं चलेगा; आप सिर्फ कड़ी मेहनत करके सर्वोत्तम की उम्मीद के भरोसे नहीं रह सकते। आपको सोच-समझकर और सचेत ढंग से स्वयं को ऐसी स्थिति में लाना होगा कि आप नई खोज के लिए तैयार हों या कम-से-कम अपने प्रतिस्पर्धियों से आगे बने रहें।

मेरा मत है कि स्वयं को इस स्थिति में लाने के लिए कम-से-कम चार चीजों की ज़रूरत होती है। पहली है, फैशन और भीड़ से बचना और शोध के लिए कोई ऐसी समस्या चुनना जो आज तो अनजानी है मगर कल मशहूर होने वाली है, और यदि अनजान से मशहूरी तक का यह बदलाव आपके दम पर होता है तो और भी बेहतर होगा। दूसरे, यदि आपको पूरी तरह निर्जन क्षेत्र न मिले, तो कोशिश कीजिए कि उस समस्या में कोई नवीन परिप्रेक्ष्य लाएँ; ऐसा करने का एक तरीका है अपने क्षेत्र के बाहर की चीज़ें पढ़ना और समस्या को एक नए दृष्टिकोण से हाथ लगाना। तीसरी चीज़ है, अपनी खूबियों का भरपूर फायदा उठाएँ और जहाँ तक सम्भव हो अपनी कमज़ोरियों से बचने की कोशिश करें। और चौथी व अन्तिम बात, मुझे हमेशा इस बात से मदद मिली है कि अपने

द्वारा चुनी गई शोध समस्या को मूल सिद्धान्तों के आधार पर परखने और उचित साबित करने की सतत कोशिश की जाए। इस बात को मैं आगे थोड़ा विस्तार में स्पष्ट करूँगा।

### **मैं जीव स्तर का जीव वैज्ञानिक क्यों हूँ?**

जीव विज्ञान आज एक अत्यन्त समृद्ध व पेचीदा विषय है और इसका कामकाज कई अलग-अलग ढंग से किया जा सकता है। जीवन की प्रक्रियाएँ कई अलग-अलग सोपानों (hierarchical levels) में संगठित हैं। एक स्तर पर इकोसिस्टम, जंगल, आबादियाँ हैं, फिर अलग-अलग जीव हैं, जिनका अध्ययन अपने-आप में किया जा सकता है। दूसरे छोर पर, यदि आप एक सजीव के अन्दर गहराई में उतरें, तो कोशिकाएँ हैं, ऊतक हैं, अंग हैं, उपांग हैं, और अन्ततः अणु हैं। संगठन के इन अलग-अलग स्तरों पर जीव विज्ञान के अध्ययन के तौर-तरीके इतने अलग-अलग हो सकते हैं कि शायद परस्पर बेमेल हों और एक-दूसरे के लिए अबूझ हों।

यह तो सही है कि सारे सम्भव स्तरों पर जैविक प्रक्रियाओं का अध्ययन ज़रूरी भी है और दिलचस्प भी मगर इनके लिए काफी अलग-अलग पद्धतियों में प्रशिक्षित, और काफी अलग-अलग दार्शनिक रुझानों वाले जीव वैज्ञानिकों की ज़रूरत होती है। इन सब वजहों से इन विभिन्न किस्म के जीव विज्ञानों

के बीच ठीक-ठाक सन्तुलन बनाए रखना लगभग नामुमकिन हो जाता है। यह बात राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय, दोनों स्तरों पर लागू होती है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि एक संस्था या जीव विज्ञान के एक विभाग के अन्दर भी सन्तुलन बनाना मुश्किल होता है।

सरलता की दृष्टि से मैं जीव विज्ञान को दो भागों में बाँटता हूँ - एक जीवान्तर्गत (sub-organismal) जीव विज्ञान जिसमें कोशिकीय व आणविक जीव विज्ञान शामिल हैं, और दूसरा जीव-स्तरीय (organismal) जीव विज्ञान जिसमें आबादी जीव विज्ञान, व्यवहार, इकोलॉजी और वैकसिक जीव विज्ञान शामिल हैं। जैसे तो जैव-विकास इन सरहदों के आर-पार जाता है, मगर आज भी जैव-विकास सम्बन्धी शोध कोशिकीय या आणविक जीव वैज्ञानिकों की अपेक्षा जीव-स्तरीय जीव वैज्ञानिक ही ज़्यादा करते हैं, हालाँकि, धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदल रही हैं। यदि हम जीव विज्ञान को इस तरह विभाजित कर दें, तो पाएँगे कि जीवान्तर्गत जीव विज्ञान तथा जीव-स्तरीय जीव विज्ञान की खोजबीन में एक व्यावहारिक अन्तर है। कोशिकीय व आणविक जीव विज्ञान के शोध के लिए यह लगभग अनिवार्य होता है कि हम अपनी ऐन्द्रिक क्षमताओं को टेक्नॉलॉजी का सहारा दें - हमें ऐसे रसायनों और उपकरणों की ज़रूरत होगी जिनकी मदद से हम वे घटक अलग कर सकें जिनका अध्ययन करना

चाहते हैं। जैसे पृथक्करण के लिए सेंट्रीफ्यूज, क्रोमेटोग्राफ्स, और अवलोकन के लिए सूक्ष्मदर्शी, वर्णक्रमदर्शी वगैरह। इसके चलते जीवान्तर्गत जीव विज्ञान में शोध टेक्नॉलॉजी पर निर्भर और वित्तीय दृष्टि से महँगा होता है। लिहाज़ा, इसमें शौकिया या साधारण लोगों की भागीदारी की गुंजाइश बहुत-ही कम होती है।

दूसरी ओर, जीव-स्तरीय जीव विज्ञान में हमारा पाला ऐसी संरचनाओं और घटनाओं से पड़ता है जो हमारी इन्द्रियों की क्षमता की हद में होती हैं। बगैर विशेष पृथक्करण या विशिष्ट अवलोकनों के भी हम काफी कुछ कर सकते हैं। लिहाज़ा, परिष्कृत टेक्नॉलॉजी और भारी भरकम अनुदान की ज़रूरत कम होती है। दरअसल, इसके लिए प्रयोगशाला में प्रयोगों की ज़रूरत प्रायः नहीं होती। इसलिए शौकिया व आम लोगों के लिए इसमें योगदान देने की काफी गुंजाइश होती है। इस सन्दर्भ में ज़रा चार्ल्स डार्विन के कार्य को याद कीजिए।

जीव-स्तरीय जीव विज्ञान के दो और लक्षण हैं जिनका जिक्र करना चाहूँगा; इसमें समृद्ध जैव विविधता तक पहुँच से मदद मिलती है और यह अत्यन्त श्रमसाध्य है। जीव-स्तरीय जीव विज्ञान जिन चीज़ों से स्वतंत्र है (टेक्नॉलॉजी, परिशुद्ध रसायन और पैसा) तथा जिन चीज़ों पर यह निर्भर है (जैव विविधता, श्रम शक्ति), उनका

मिला-जुला परिणाम है कि एक विकासशील देश में कार्यरत मेरे जैसे व्यक्ति के लिए यह सही विकल्प है, खासतौर से यदि मैं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध में अगली कतार में रहना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ यह इस बात की पर्याप्त व्याख्या कर देता है कि क्यों मैं एक जीव-स्तरीय जीव वैज्ञानिक हूँ।

### **मैं सामाजिक व्यवहार के विकास का अध्ययन क्यों करता हूँ?**

मैं उपरोक्त औचित्य वर्णन को थोड़ा और आगे बढ़ाना चाहूँगा। थियोडेसियस डोबज़ेन्स्की का अनुकरण करते हुए मैं मानता हूँ कि “जैव-विकास की रोशनी के बगैर जीव विज्ञान में किसी भी चीज़ का कोई अर्थ नहीं है।” यह समझना भी आसान है कि इकोलॉजी ही जीव-स्तरीय जीव विज्ञान की बुनियाद है। लिहाज़ा, मैं किसी ऐसी समस्या की तलाश में हूँ जो इकोलॉजी और जैव-विकास के सम्पर्क बिन्दु पर स्थित हो। इकोलॉजी सजीवों और उनके पर्यावरण के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया के अध्ययन का नाम है। सारे सजीवों के पर्यावरण में सजीव और निर्जीव, दोनों तरह के घटक होते हैं। पता यह चला है कि पर्यावरण के निर्जीव घटकों और सजीव घटकों से होने वाली अन्तर्क्रियाओं में काफी उल्लेखनीय फर्क होते हैं।

जब सजीव अपने पर्यावरण के निर्जीव घटकों के साथ अन्तर्क्रिया

करते हैं तो हो सकता है कि पर्यावरण से कुछ फीडबैक प्राप्त हो, मगर इस अन्तर्क्रिया में हथियारों की होड़ जैसी कोई चीज़ नहीं होती। मगर जब सजीव अपने पर्यावरण के सजीव घटकों के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं तो सजीवों और पर्यावरण के बीच कहीं ज़्यादा फीडबैक का आदान-प्रदान होता है, और अक्सर हथियारों की होड़ भी चलती है। मेरी राय में यह फीडबैक और हथियारों की होड़ सजीवों और उनके पर्यावरण के सजीव घटकों के बीच अन्तर्क्रिया के अध्ययन को कहीं ज़्यादा पेचीदा और दिलचस्प बना देती है।

इसी प्रकार से, सजीवों और उनके पर्यावरण के सजीव घटकों के बीच अन्तर्क्रिया यानी विभिन्न सजीवों के बीच अन्तर्क्रिया को मोटे तौर पर दो रूपों में बाँटा जा सकता है: अपनी ही प्रजाति के अन्य सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया और अन्य प्रजातियों के सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया। इन दोनों में भी रोचक अन्तर होते हैं। जब सजीव अपनी ही प्रजाति के अन्य सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं तो कम-से-कम सिद्धान्त रूप में हम हर सम्भव किस्म की अन्तर्क्रिया देख सकते हैं - स्वार्थी, सहयोगी, परोपकारी, और द्वेषपूर्ण। मगर जब सजीव किसी अन्य प्रजाति के सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं तो हमें सिर्फ स्वार्थ तथा कभी-कभार सहयोग देखने को मिल सकता है, मगर परोपकार और

द्वेष तो कभी नहीं। चार्ल्स डार्विन का मशहूर कथन है, “यदि यह सिद्ध किया जा सके कि किसी प्रजाति की संरचना का कोई भी हिस्सा शुद्धतः किसी अन्य प्रजाति के भले के लिए बना है, तो मेरा सिद्धान्त खत्म हो जाएगा।”

लिहाज़ा, मैं प्रजाति के अन्दर (अन्तरा-प्रजाति) होने वाली अत्यन्त समृद्ध व पेचीदा अन्तर्क्रियाओं के पैटर्न का अध्ययन करना चाहूँगा। एक बार अन्तरा-प्रजाति अन्तर्क्रियाओं के अध्ययन का फैसला कर लेने पर मैं स्वार्थीपन, सहयोग, परोपकार और द्वेष का अध्ययन कर सकता हूँ। इनके बीच निर्णय कैसे करूँगा? स्वार्थीपन काफी आम है और इसकी व्याख्या डार्विनवादी प्राकृतिक चयन के ढाँचे में हो सकती है। सहयोग भी काफी आम है और इसकी व्याख्या भी इसी ढाँचे में की जा सकती है क्योंकि इससे दोनों पक्षों को लाभ मिलता है। दूसरी ओर, परोपकार वैसे तो आम बात है मगर इसकी व्याख्या अपेक्षाकृत मुश्किल है। वास्तव में, परोपकार को जैव-विकास की एक अनसुलझी गुथी माना जाता है (दूसरी गुथी लैंगिक प्रजनन है)। परोपकारी सदस्यों की प्रजनन दर और उत्तरजीविता स्वार्थी सदस्यों की तुलना में कम होती है, और होना यह चाहिए कि प्राकृतिक चयन के द्वारा इनका सफाया हो जाए मगर कई बार ये बने रहते हैं। यह एक विरोधाभास है। और अन्ततः द्वेष की व्याख्या भी मुश्किल है, मगर यह काफी

कम पाया जाता है। दरअसल, गैर-इन्सानी प्राणियों में इसके अस्तित्व पर भी सन्देह व्यक्त किए गए हैं।

तो यदि मुझे इन चार में से चुनना हो, तो ज़ाहिर है मैं परोपकार को चुनूँगा क्योंकि एक तो यह आम तौर पर पाया जाता है, जिसका मतलब है कि मैं इसका अध्ययन आसानी से कर सकता हूँ। दूसरी बात यह है कि इसकी व्याख्या मुश्किल है, जिसका मतलब है कि यह एक अच्छी चुनौती है। और मैं इसी का अध्ययन करता हूँ - परोपकार का विकास या ज़्यादा सामान्य रूप में कहें तो सामाजिक व्यवहार का विकास। यह था औचित्य उस चीज़ का जिसका अध्ययन मैं करता हूँ। और मुझे लगता है कि लगातार यह औचित्य बताते रहना उपयोगी होता है। निजी तौर पर ऐसा करना अच्छा है, मगर मात्र उतना ही पर्याप्त नहीं है। इसे सार्वजनिक करना भी ज़रूरी है। इसके प्रति किसी अन्य व्यक्ति को आश्वस्त करना ज़रूरी है क्योंकि खुद को आश्वस्त करना तो सरल होता है।

### **मैं रोपालीडिया मार्जिनेटा का अध्ययन क्यों करता हूँ?**

हर साल अपने विभाग के लिए पीएच.डी. प्रत्याशियों का इंटरव्यू करते समय मैं अक्सर उनसे पूछता हूँ कि यदि पूरी छूट मिले, तो वे किस चीज़ पर शोध करना चाहेंगे। कुछ वर्ष पहले एक निहायत दृढ़ विद्यार्थी ने मुझे

अत्यन्त स्पष्ट जवाब दिया था: वह छोटी बिल्लियों (small cats यानी शेर, तेन्दुआ, बाघ वगैरह के अलावा बिल्ली वर्ग के सदस्य) पर काम करना चाहता था, उनके बारे में जो भी सवाल मन में आए पूछना चाहता था और उनके जवाब पाने के लिए हर मुमकिन तरीके का इस्तेमाल करना चाहता था। मैंने उसके साथ बहस करने की कोशिश की, उसे याद दिलाने की कोशिश की कि छोटी बिल्लियों का अध्ययन करना कठिन होता है - वे निशाचर होती हैं, शर्मिली होती हैं, और उनका अवलोकन करके आँकड़े इकट्ठे करना तो दूर, उन्हें खोजना ही मुश्किल होता है।

मैंने कहा कि क्यों न किसी सरल जीव के साथ काम किया जाए, जिसके बारे में आप ज़्यादा परिष्कृत सवाल पूछ सकते हैं। नहीं, वह अडिग रहा, यदि छूट मिली तो वह छोटी बिल्लियों का ही अध्ययन करेगा। अन्य विद्यार्थियों ने मुझे अलग-अलग जवाब दिए हैं, मगर बिल्लियों के प्रेमी इस नौजवान जैसी दृढ़ता किसी में न थी। कुछ विद्यार्थियों ने शोध के क्षेत्र या सवालों को प्राथमिकता दी मगर वे अध्ययन-जन्तु और विधियों को लेकर लचीले थे। कुछ विद्यार्थी विधि के प्रति आसक्त थे मगर शोध के सवाल या जन्तु मॉडल को लेकर उदार थे।



## शोध-प्रश्न सबसे अहम

किसी ने भी मुझे विद्यार्थियों से ज़्यादा नहीं सिखाया। विद्यार्थियों के जवाबों से मुझे विज्ञान के समाज शास्त्र को लेकर काफी मसाला मिला है। लोग यह तय कैसे करते हैं कि अध्ययन का विषय क्या हो, किस जन्तु का उपयोग किया जाए, कौन-सी विधियों का उपयोग किया जाए और उन्हें यह चयन कैसे करना चाहिए? इंटरव्यू के दौरान कई विद्यार्थियों के जवाबों की काफी जुगाली करने के बाद मैंने अपने निजी पूर्वाग्रहों को निम्नलिखित ढंग से व्यक्त किया है: शोध-प्रश्न पहले आना चाहिए और उसके बाद तय करना चाहिए कि उस प्रश्न का जवाब पाने के लिए सर्वोत्तम जन्तु कौन-सा होगा। विधियाँ सबसे अन्त में आनी चाहिए और ये शोध-प्रश्न तथा जन्तु के आधार पर तय होनी चाहिए, विधियाँ हमारे कामकाज की निर्देशक नहीं होनी चाहिए। बहरहाल, मुझे यह स्वीकार करना होगा कि शोध-प्रश्न और जन्तु का चयन आसान नहीं होता। कारण यह है कि शोध-प्रश्न ज़्यादा महत्वपूर्ण होते हुए भी अमूर्त होता है और एक मायने में 'मृत' होता है जबकि अध्ययन का जन्तु जीवन्त होता है और प्रायः आकर्षक होता है। यह मुश्किल होता है कि आप अपने अध्ययन जन्तु के साथ प्रेम में न पड़ें। मगर इसमें बुराई भी क्या है? पता नहीं, मैं तो अपने अध्ययन जन्तु के साथ पिछले 30 वर्षों से प्रेम करता रहा हूँ और ऐसा

नहीं लगता कि इससे कोई नुकसान हुआ है।

## आर. मार्जिनेटा से प्रेम

मैं यह तो पहले ही बता चुका हूँ कि किन परिस्थितियों में मैंने ऊष्णकटिबन्धीय, पुरानी दुनिया की, आदिम वास्तविक सामाजिक ततैया आर. मार्जिनेटा के अध्ययन को चुना था। मैं कबूल करता हूँ कि इसका अध्ययन शुरू करने के बाद मैं पूरी तरह इसके प्रेम में पड़ गया। ततैया ने मुझे दर्ज़नों बार काटा है मगर मैंने कभी शिकायत नहीं की। शायद प्रेम का यही असर होता है। एक बार मुझे एक साथी ततैया शोधकर्ता की चिट्ठी मिली थी जिसमें उसने लिखा था कि वह अभी-अभी फिलीपींस पहुँचा है और जीवन में पहली बार रोपालीडिया के दंश का सौभाग्य उसे मिला है। अलबत्ता, रोपालीडिया का सच्चा सौन्दर्य तो एक अध्ययन-जन्तु के रूप में उसकी उपयोगिता से जुड़ा है।

रोपालीडिया जीनस ही अनोखा व अद्भुत है। इस जीनस में आदिम वास्तविक सामाजिक तथा अत्यन्त विकसित सामाजिक प्रजातियाँ शामिल हैं। इनमें बस्ती के आकार और सामाजिक जीव विज्ञान के लिहाज़ से बेजोड़ विविधता पाई जाती है। सामाजिक विकास की गुत्थी सुलझाने में रोपालीडिया जीनस की ज़बर्दस्त ताकत का इस्तेमाल दो तरह से हो सकता है। एक है कि जीनस के अन्दर

मौजूद विविधता का लाभ उठाया जाए और इसकी विभिन्न प्रजातियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। आधुनिक वैकासिक जीव विज्ञान में यह एक शक्तिशाली तरीका है। दूसरा तरीका है कि एक ही प्रजाति पर ध्यान केन्द्रित किया जाए और सहयोग व टकराव का विस्तृत विश्लेषण किया जाए तथा सामाजिक जीवन की लागत व लाभों का आकलन किया जाए। मैंने दूसरा तरीका चुना और यह एक कारण है कि क्यों मेरा अपने अध्ययन-जन्तु से इश्क हो गया।

देखा जाए, तो *आर. मार्जिनेटा* का चुनाव दूरदर्शिता पूर्ण साबित हुआ। इसकी बस्ती का छोटा आकार, जातियों के बीच बाह्य रचना में अन्तरों का अभाव, एकल व एकाधिक संस्थापिका का सह-अस्तित्व, प्यूपा (शंखी) में से निकलती मादाओं के लिए व्यवहार के विविध विकल्पों की उपस्थिति, ये सब मिलकर *आर. मार्जिनेटा* को एक आदर्श प्रजाति बनाते हैं जिसकी मदद से सामाजिक जीवन को बढ़ावा देने वाले वैकासिक कारकों की छानबीन की जा सकती है। मगर *आर. मार्जिनेटा* को सचमुच खास बनाने वाली बात यह है कि यह ऊष्णकटिबन्ध क्षेत्र में रहती है, और इस वजह से इसका प्रजनन चक्र सदाबहार व अनियतकालिक (perennial indeterminate) होता है। इसके चलते ये मरणशील ततैया अमर बस्तियाँ बनाती हैं। इनमें लगातार नए मज़दूर जुड़ते रहते हैं, कभी-कभार

नई रानियाँ जुड़ जाती हैं। इस वजह से इन ततैयों को युद्ध व शान्ति के अपने खेल दिखाने का सतत मंच मिलता है। सामाजिकता के कारकों की छानबीन के सन्दर्भ में तो *आर. मार्जिनेटा* अमूल्य रही है, ये उन तात्कालिक क्रियाविधियों को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण रही हैं जिनके ज़रिए सामाजिक जीवन सम्भव हो पाता है। यह बात मेरे अनुसंधान के ऊपर प्रस्तुत चन्द उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है। आज मेरे साथ *आर. मार्जिनेटा* के सौन्दर्य पर फिदा छात्रों की एक टीम है और कई अन्य आकर्षक सवालों के जवाब लगातार सामने आ रहे हैं।

जब ये जवाब बेहिचक सामने आ रहे हैं, तो मेरे लिए किसी अन्य प्रजाति के अध्ययन का रुख करना बेतुका ही होगा, हालाँकि, मेरे परिवेश में कई अन्य अत्यन्त आकर्षक प्रजातियों का खज़ाना मौजूद है। लगता नहीं कि मैं कभी अपने पहले प्रेम को छोड़ने का कोई कारण ढूँढ़ पाऊँगा। मैं कबूल करता हूँ कि हम समय-समय पर उसी जीनस की एक अन्य प्रजाति *आर. सायथीफॉर्मिस* की ओर मुड़ते हैं मगर जो छात्र इस दूसरी प्रजाति पर काम करते हैं, उन्हें यह जानकर खीझ होती होगी कि *आर. सीयथीफॉर्मिस* में मेरी दिलचस्पी सिर्फ इस वजह से है कि इसका उपयोग करके *आर. मार्जिनेटा* को बेहतर समझा जा सकता है। इस बात को आसानी से प्रमाणित किया



जा सकता है। आर. सायथीफॉर्मिस आदिम वास्तविक सामाजिक प्रजाति का एकदम शास्त्रोक्त उदाहरण है। इसकी रानियाँ काफी प्रभावशाली ढंग से आक्रामक होती हैं। बस्ती में ये अल्फा (सर्व-प्रमुख) स्थिति में होती हैं, शारीरिक आक्रमण के ज़रिए मज़दूरों के प्रजनन को रोकती हैं, और केन्द्रीकृत ऊपर-से-नीचे नियंत्रण के ज़रिए मज़दूरों द्वारा भोजन संग्रहण का नियमन करती हैं। जितनी हद तक हम दुनिया को बता सकेंगे कि आर. सायथीफॉर्मिस

एक सामान्य आदिम वास्तविक सामाजिक प्रजाति की तरह व्यवहार करती है, उतने ही आर. मार्जिनेटा को लेकर हमारे असाधारण दावे विश्वसनीय लगेंगे। इसीलिए मेरा नारा है, 'आर. मार्जिनेटा की सेवा में आर. सायथीफॉर्मिस।'

मैं उम्मीद करता हूँ कि आर. मार्जिनेटा काफी समय तक विज्ञान की सेवा में लगी रहेगी और मेरे शौक का केन्द्र बनी रहेगी।

**राघवेन्द्र गडगकर:** सेंटर फॉर इकोलॉजिकल साइंसेज़, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बेंगलूर में प्रोफेसर हैं और विज्ञान का इतिहास, इंडियन नेशनल साइंस अकादमी में अनुसंधान परिषद के अध्यक्ष हैं। 1993 में जीव विज्ञान का 'शान्ति स्वरूप भटनागर' सम्मान मिला था।

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी:** एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह आलेख कोलकाता में फरवरी 2010 में आयोजित 'युवा खोजी सम्मेलन' तथा अगस्त 2010 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कीट अध्ययन संघ के सोलहवें सम्मेलन, कोपनहेगन में दिए गए व्याख्यान पर आधारित है।

मूल लेख 'करेंट साइंस' पत्रिका के अंक-6, 25 मार्च 2011, खण्ड 100 में प्रकाशित हुआ था।

